RAJBLL01667/20/1/2012-TC

ISSN : 2322-0074

अलख दृष्टि

ALAKH DRISHTI

(भाषा, दर्शन, साहित्य, संस्कृति एवं मानविकी की संवाहिका त्रैमासिक शोध पत्रिका)

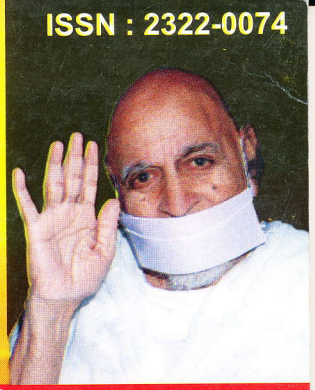

वर्ष-1 • अंक-3 • त्रैमासिक • अक्टूबर-दिसम्बर, 2013

आचार्य तुलसी जन्म शताब्दी वर्ष पर विशेष अंक

अनुक्रमणिका

क्र.सं.	विषय	लेखक	पृष्ठ सं.
01.	अनिर्वचनीय सौन्दर्य के आश्रय : श्री गुरूदेव तुलसी	प्रो. हरिशंकर पाण्डेय	04-07
02.	आचार्य तुलसी का मानवतावाद	प्रो. जे.पी.एन. मिश्रा, डॉ. हेमलता जोशी	08-12
03.	अणुव्रत दर्शन का वैशिष्ट्य	डॉ.आनन्द प्रकाश त्रिपाठी 'रत्नेश'	13-16
04.	आचार्य तुलसी का बहुआयामी व्यक्तित्व	डॉ. बी.एल. जैन	17-20
05.	अणुव्रत आंदोलन और अहिंसा	शिवनाथ मिश्रा	21-23
06.	प्राकृत आगम साहित्य का सम्पादन-वैशिष्ट्य (आचार्य तुलसी के चिन्तन में)	डॉ0 जिनेन्द्र कुमार जैन	24-29
07.	समाज सुधार में आचार्य श्री तुलसी का योगदान	डॉ. बिजेन्द्र प्रधान	30-33
08.	आचार्य तुलसी का शैक्षिक चिन्तन एवं मूल्य	डॉ. अमिता जैन	34-36
09.	सामाजिक उत्थान के संदर्भ में आचार्य तुलसी	पुष्पा मिश्रा	37-39
10.	दलितोद्धारक आचार्य तुलसी	डॉ. जुगल किशोर दाधीच	40-44
11.	आचार्य तुलसी - वाङ्मय में मूल्यपरक शिक्षा	डॉ. गिरिराज भोजक	45-48
12.	आचार्य तुलसी का राजस्थानी साहित्य में योगदान	घनश्यामनाथ कच्छावा	49-51
13.	Acharya Tulsi's Vision and Application to Spirituality	Dr. Pradyumna Shah Singh	52-59
	शोध समाचार	तृप्ति त्रिपाठी	60

दलितोद्धारक आचार्य तुलसी

डॉ. जुगल किशोर दाधीच

उत्तराध्ययन निर्युक्ति में शूद्र जाति के लिए हरिकेश, चाण्डाल, मतंग (मातंग) बाह्य (बाहिर) पाण आदि शब्दों का प्रयोग मिलता है।[1] प्राचीन भारत में इन्हें भग्न पुरुष भी कहा जाता था। सन् 1931 के बाद जनगणना में इन्हें बाहरी जाति के रूप में सम्बोधित किया गया। 'बाहरी जाति' नाम इसलिए रखा गया कि समाज के किसी भी उत्सव तथा कार्यक्रम आदि में इनकी सहभागिता नहीं होती थी।

सन् 1935 में साइमन कमीशन द्वारा अस्पृश्य जाति के लिए अनुसूचित जाति का प्रयोग किया गया। अनुसूचित नाम रखने के पीछे यह कारण रहा कि उस समय अनेक अस्पृश्य जातियों को सुविधा प्रदान करने हेतु एक अनुसूची तैयार की गई थी अतः वैधानिक दृष्टि से इस वर्ग के लिए अनुसूचित जाति शब्द का प्रयोग होने लगा। वर्तमान में अनुसूचित शब्द अस्पृश्यता का बोधक न होकर अल्पसंख्यक समुदाय का बोधक हो गया है। अंग्रेजों ने इस वर्ग की दयनीय आर्थिक स्थिति को देखकर इसे दलित वर्ग के नाम से पुकारा। स्वामी दयानंद सरस्वती द्वारा प्रवर्तित आर्य समाज के संचालकों ने स्पष्ट कहा– "दलित शब्द अछूत का वाचक नहीं है। इनका नाम दलित इसलिए है क्योंकि समाज ने इन्हें दबाकर ही नहीं रखा, अपितु मानवीय अधिकारों से भी वंचित रखा है। आज के हरिजन स्वयं को दलितवर्ग के रूप में प्रस्तुत करना अधिक पसंद करते हैं।"

गांधीजी ने अत्यन्त उदारता और करुणा से दलित वर्ग को उच्चता एवं महत्त्व प्रदान करने हेतु उनके लिए हरिजन शब्द का प्रयोग करते हुए कहा– **"हरिजन शब्द का अर्थ है- भगवान् का आदमी। अस्पृश्य व्यक्ति ही हरिजन हैं क्योंकि वे ईश्वर से जुड़े हुए हैं। इसके विपरीत भेदभाव रखने वाले हम दुर्जन हैं।"**[2] इस बात की प्रतिक्रिया करते हुए कुछ लोगों ने कहा– "दलित वर्ग हरि के हैं तो हम क्या शैतान के हैं?" यद्यपि गांधीजी द्वारा प्रयुक्त यह शब्द प्रसिद्ध बहुत हुआ लेकिन वर्तमान में हरिजन शब्द का उच्चारण होते ही व्यक्ति की आंखों के सामने अस्पृश्य वर्ग सामने आ जाता है अतः गांधीजी द्वारा प्रदत्त यह शब्द उनके उत्कर्ष का निमित्त नहीं बन सका।

एक बार आचार्यश्री प्रवचन कर रहे थे। प्रवचन की सम्पन्नता पर एक भाई ने खड़े होकर प्रश्न किया– "आचार्यजी! 'हरिजन' शब्द की कुछ व्याख्या करें।" आचार्यश्री ने उत्तर देते हुए कहा– "गांधीजी ने इस वर्ग को आदर देने हेतु 'हरिजन' शब्द का प्रयोग किया था लेकिन उसका जो परिणाम आना चाहिए था, वह नहीं आया। मेरे विचार से हरिजन के स्थान पर 'विकासशील' शब्द का प्रयोग अधिक सार्थक हो सकेगा क्योंकि यह शब्द विकास का उत्प्रेरक है।"

हरिजनों को 'महत्तर' शब्द से भी सम्बोधित किया गया। इस शब्द की व्याख्या करते हुए आचार्य तुलसी ने कहा– " 'महत्तर' शब्द का अर्थ है–महान् से भी महान्। स्वच्छता के कार्य के लिए इस वर्ग को कभी इतना सम्मान प्राप्त हुआ होगा, वह इस शब्द से प्रकट होता है किन्तु शब्दों का उत्कर्ष या अपकर्ष होता रहता है। आज इस शब्द का अपकर्ष हो गया। यही कारण है कि 'महत्तर' शब्द जाति के लिए सीमित हो गया तथा इस शब्द से लोग भड़क उठते हैं।"[3]

दलितों की सामाजिक स्थिति

भारत में अस्पृश्यता और जातिवाद का विष किस युग की देन है, इसका प्रारम्भ कब हुआ, यह आज निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता लेकिन यह निश्चित कहा जा सकता है कि जातिवाद की इस प्रथा ने वर्ग विशेष को अस्पृश्य मानकर अनेक क्षेत्रों में उसके विकास पर प्रतिबंध लगा दिया। मनुस्मृति में शूद्रों की जिस स्थिति तथा उसके कार्यों का वर्णन मिलता है, उसके आधार पर यह कहा जा सकता है कि स्मृतिकाल में जाति के आधार पर ऊंच-नीच की भावना समाज में विकसित हुई होगी। मनुस्मृति में स्पष्ट निर्देश है कि वेदपाठी ब्राह्मण और यशस्वी विप्रों की सेवा करना ही शूद्र का परमधर्म और मुक्ति है।[4] अस्पृश्यता का प्रकर्ष तो यहां तक मिलता है कि मृत ब्राह्मण के शरीर को शूद्र के द्वारा श्मशान घाट न ले जाया जाए क्योंकि शूद्र के स्पर्श से दूषित उस शरीर की आहुति स्वर्गप्रद नहीं होती।[5] शूद्र अपने से उच्च ब्राह्मण वर्ण की निंदा करे तो राजा उसकी जीभ निकाल ले क्योंकि उसका जन्म पैर से हुआ है। अपने से उच्च वर्ण के बारे में कुछ भी कहने का उसका अधिकार नहीं है।[6] इसके अतिरिक्त शूद्र यदि ब्राह्मण के आसन पर बैठ जाए तो लोहा गर्म करके उसकी पीठ पर दाग कर देशनिकाला दे दिया जाए, उसके शरीर से मांसपिण्ड कटवा दिया जाए आदि आदि।[7]

कालान्तर में भारत में दलितों की सामाजिक स्थिति एक पशु से भी बदतर हो गई थी। चीनी यात्री फाहियान के अनुसार भारत में जब कभी चांडाल बाजार में प्रवेश करता तो लकड़ी बजाता हुआ चलता था, जिससे लोग दूर हट जाते थे। चीनी यात्री ह्वांगच्वांग ने भी लिखा है कि चांडाल नगर के बाहर रहते और उनके घर पर विशेष चिह्न होते थे। 'ग्यारहवीं सदी का भारत' नामक पुस्तक में शूद्रों की सामाजिक स्थिति पर विस्तृत प्रकाश डाला गया है। महाजन लोग अपनी गंदगी उनके सिर पर उठवाकर उसके प्रतिदान में जूठी पत्तलें देकर स्वयं को गर्वित मानते थे।

जल-प्राप्त हेतु सार्वजनिक नदी और कूप के पानी का उपयोग उनके लिए प्रतिषिद्ध था। तालाब का गंदा पानी पीने के कारण कहीं-कहीं उन्हें जीवन से भी हाथ धोना पड़ता था। शूद्र और हरिजन के साथ खाना तो दूर, यदि कोई उनके हाथ का दिया कवल खा लेता तो उसे भी जाति से बहिष्कृत कर दिया जाता। धर्मस्थानों के दरवाजे उनके लिए सर्वथा बंद थे। तथाकथित धर्माचार्य खुले शब्दों में कहते थे कि हरिजनों को मंदिर-प्रवेश का कोई अधिकार नहीं है, वे केवल बाहर से मंदिर का कलश देख सकते हैं। शिक्षा-प्राप्ति की शालाओं में भी उनका प्रवेश निषिद्ध था। अस्पृश्यता के कारण दलित लोग सार्वजनिक सुविधाओं का उपयोग नहीं कर सकते थे। सामूहिक रूप से रीति-रिवाज, उत्सव, भोज आदि साथ में मनाना तो बहुत दूर, उनकी छाया पड़ने मात्र से पवित्र होने के लिए स्नान किया जाता था तथा ब्राह्मण लोग विशेष संस्कार से उसे पवित्र करते थे। सामान्य अपराध करने पर भी इनके लिए कठोर दंड की व्यवस्था थी। आर्थिक दृष्टि से भी यह समाज का सबसे पिछड़ा वर्ग माना जाता था। कुछ धर्मशास्त्रों में तो यहां तक लिखा हुआ है कि जिस गांव में चाण्डाल रहता हो, उसमें विद्याध्ययन भी नहीं करना चाहिए। गौतमधर्मसूत्र में तो यह उल्लेख मिलता है कि अगर शूद्र वेद का उच्चारण कर ले तो उसकी जीभ काट

दी जाए तथा वेदमंत्र को धारण करने पर उसका शरीर काट दिया जाए।[8]

मनुस्मृति के अनुसार शूद्रों को धर्म और व्रत का उपदेश देने वाला मनुष्य उसी शूद्र के साथ असंवृत नामक नरक को प्राप्त होता है।[9] रामायण में उल्लेख मिलता है कि अनधिकार तप करने के कारण वर्णधर्म की रक्षा करने के लिए राम ने शम्बूक का वध कर दिया।[10] उत्तररामचरितम् में भी इसी घटना का उल्लेख मिलता है। यह इतिहास की ऐसी घटना है, जिस पर अनेक प्रश्नचिह्न लगे हुए हैं। धर्मानंद कौशाम्बी ने भगवान बुद्ध नामक पुस्तक में शम्बूकवध वाली घटना को काल्पनिक माना है। डॉ. राममनोहर लोहिया ने महर्षि वशिष्ठ की कटु आलोचना की, जिसने शम्बूक को इसलिए मरवा डाला क्योंकि वह शूद्र होकर तपस्या कर रहा था। इस घटना प्रसंग में आचार्य तुलसी का मंतव्य था कि– **"धर्मान्ध लोगों ने कैसी-कैसी गलत कथाएं और बातें महापुरुषों के नाम से प्रचलित कर दी हैं। अस्पृश्यता और अनार्यता के नाम पर करोड़ों-करोड़ों मनुष्यों को धर्म से वंचित कर दिया। भगवान् की उपासना करने से वंचित कर दिया।"**[11]

मराठा राज्य में अस्पृश्यों की ऐसी स्थिति थी कि यदि कोई हिंदू सड़क पर चल रहा हो तो अछूत को सड़क पर चलने की अनुमति नहीं थी क्योंकि उसकी परछाई पड़ने से हिंदू के अपवित्र होने का भय था। अछूत के लिए यह अनिवार्य था कि वह निशानी के लिए एक काला धागा अपने हाथ या गले में बांधे, ताकि हिंदू अनजाने में उसे छू न सके। पुणे में हर अछूत को कमर में झाड़ू बांधकर चलना जरूरी था, जिससे उसके पैर के पदचिन्ह मिट जाएं, उस पर पैर रखकर कोई हिंदू अपवित्र न हो जाए। अछूत अपने थूकने के लिए मिट्टी का बर्तन अपनी गर्दन पर लटकाकर चलते थे, इसका कारण था कि कोई हिंदू जमीन पर गिरे थूक से अपवित्र न हो जाए।[12]

सन् 1935 में अहमदाबाद के जन नामक गांव में अछूत स्त्रियों पर सवर्ण ब्राह्मणों ने इसलिए आक्रमण किया क्योंकि वे धातु के बर्तन में पानी ला रही थीं। जयपुर राज्य के चकवारा गांव में एक अछूत ने तीर्थयात्रा करके बिरादरी भोज किया। **वहां सैंकड़ों हिंदू लाठी लेकर उन पर टूट पड़े और भोजन इसलिए खराब कर दिया क्योंकि वे घी से बने पक्वान्न खा रहे थे। इसका कारण उन्होंने बताया कि घी तो हिंदू खा सकते हैं, अछूतों को घी खाने का अधिकार नहीं है।**[13] कुल मिलाकर यह वर्ग समाज में दासों की भांति जीवन बिताने को मजबूर था।

डॉ. भीमराव अम्बेडकर जाति से महार जाति के थे। उन्होंने अपने जीवन में जाति के कारण अत्यन्त उत्पीड़न और अपमान भरी स्थितियों को सहन किया। सतारा के स्कूल में उन्हें सवर्ण छात्रों से अलग बिठाया जाता तथा बैठने हेतु टाट भी घर से लाना होता था। स्कूल में जब प्यास लगती, उस समय कोई नल खोल देता तो पानी पी सकते थे, अन्यथा उन्हें प्यासा रहना पड़ता। घर जाकर ही पानी पीते थे। अध्यापक उनकी कॉपियां हाथ में लेकर चेक नहीं करते थे। प्रश्न हल करने के लिए ब्लैकबोर्ड पर भी उनको नहीं बुलाया जाता था। कोई भी गाड़ीवान उनको अपनी गाड़ी में नहीं बिठाता था। यहां तक कि कोई नाई उनके बाल काटने को तैयार नहीं होता था।[14] अनुसूचित जाति से सम्बन्धित होने के कारण प्रतिभा होने पर भी अम्बेडकर को संस्कृत और वेद के अध्ययन से वंचित रखा गया। भारत लौटने पर बड़ौदा रियासत में वहां के महाराजा ने उनके बुद्धिकौशल से प्रभावित होकर उनको सैन्य सचिव नियुक्त किया लेकिन उनको अछूत समझकर चपरासी ऊपर से फाइल पटककर चले जाते थे। बड़ौदा प्रवास में उन्होंने और भी अनेक अपमान जनक स्थितियों को सहन किया।

इस संदर्भ में गांधीजी ने भी अपने बचपन का एक अनुभव लिखा है। जब वे बारह वर्ष के थे, तब उक्का नामक हरिजन उनके यहां सफाई के लिए आता था। यदि कभी भूल से उसका स्पर्श हो जाता तो गांधीजी को स्नान करना पड़ता था। इस संदर्भ में गांधीजी ने अपने विचार लिखते हुए कहा– "यद्यपि उस समय बड़ों का सम्मान करने के लिए मैं वैसा कर लेता था, लेकिन उस स्थिति को देखकर मेरा मन विद्रोह से भर उठता था और कई बार मैं अपनी मां से पूछता था कि यह उक्का अस्पृश्य क्यों है? गांधीजी के भाई लक्ष्मीदासजी छुआछूत का पालन न करने

के कारण वर्षों तक उनसे नाराज रहे। वे चौदह वर्षों तक गांधीजी को रजिस्ट्री से पत्र भेजते रहे, जिसमें सिर्फ इस सम्बन्ध में गालियां और श्राप लिखे रहते थे। मृत्यु के छह माह पूर्व उन्हे अपनी गलती महसूस हुई।[15] हरिजन-उत्थान नामक पुस्तिका में गांधीजी ने स्पष्ट लिखा है– **"मेरी तो यह राय है कि सदियों तक हरिजनों को पतित और उपेक्षित बनाए रखकर सवर्ण हिंदुओं ने जो पाप किया है, उसका प्रायश्चित्त किसी भी तरह नहीं हो सकता।"**[16]

मोहनजी जैन का अनुभव भी तात्कालीन परिस्थितियों का चित्र उपस्थित करता है। सरदारशहर की हरिजन बस्ती में एक कार्यक्रम रखा गया। अपनी प्रसन्नता व्यक्त करते हुए हरिजनों ने मोहनजी आदि कार्यकर्त्ताओं को मिठाई खाने को दी। कार्यकर्त्ताओं ने वह मिठाई खा ली। एक व्यक्ति ने शहर में आकर नमक मिर्च लगाकर यह घटना लोगों को बता दी। जैसे ही कार्यकर्त्ता शहर आए, लोगों ने उनको घेर कर बहुत बुरा-भला कहा और जाति से बहिष्कृत करने की धमकी दी। कार्यकर्त्ता होने के कारण मोहनजी को समाज का विरोध अधिक सहन करना पड़ा। घर वाले भी उनसे अछूत का सा व्यवहार करने लगे। समाज के लोगों ने उनकी मां को कहा – "अब संत तुम्हारे यहां गोचरी नहीं आएंगे।" समाज की इस विरोधी स्थिति को देखकर उनकी मां घबरा गई। तीन दिन तक उन्होंने परिजनों से छिपकर छत पर ले जाकर मोहनजी को खाना खिलाया। वे अपने मानसिक समाधान हेतु अपने भतीजे सेठ सुमेरमलजी दूगड़ के पास गई और पूछा– "क्या साधु-संत अब मेरे गोचरी नहीं पधारेंगे? उन्होंने उनकी मां को समाहित करते हुए कहा– "साधु-साध्वी तो स्वयं हरिजनो के घर गोचरी जाएंगे। आचार्यश्री अस्पृश्यता के विरोधी हैं। मोहन ने कोई गलत कार्य नहीं किया, साहस का कार्य किया है।" इस बात को सुनकर उनकी मां प्रसन्न हो गई और बड़े प्यार से रसोईघर में ले जाकर उनको भोजन कराया। इस घटना से स्पष्ट है कि स्वतंत्रता समाप्ति के पश्चात् भी समाज में जातिप्रथा की जड़े कितनी गहरी जमी हुई थी।

राजकिशोर के अनुसार हिंदुओं ने दलित वर्ग को शास्त्रविहीन, शस्त्रविहीन और धनविहीन बना दिया है। वास्तव में दलित वर्ग हिंदूधर्म का गुलाम वर्ग है।"[17] ब्राह्मण लोग जातिभेद को इसलिए नहीं मिटाना चाहते क्योंकि इससे वर्षों से चल रहा उनका प्रभुत्व समाप्त हो जाएगा। इस संदर्भ में आचार्य तुलसी का निम्न वक्तव्य सवर्ण हिंदुओं को कुछ सोचने को बाध्य करता है–**"वसुधैव कुटुम्बकम् की बात कहने वाला हिंदू समाज दलितवर्ग के प्रति इतना अमानवीय व्यवहार क्यों करता है? एक ब्रह्म कहने वाले व्यक्ति मानव-मानव में भेदभाव की रेखा क्यों खींचते हैं?**

वर्तमान में इस वर्ग की स्थिति मे काफी अंतर आया है। शहरों में शिक्षा के प्रति अभिरुचि बढ़ने से आत्म स्वाभिमान जागा है तथा घृणा और अस्पृश्यता की भावना से भी अंतर आया है लेकिन फिर भी महात्मा गांधी और आचार्य तुलसी आदि महापुरुष जिस सामाजिक विषमता को समाप्त कर मानवीय समानता की स्थापना करना चाहते थे, वह मंजिल अभी दूर है।

संदर्भ सूची –

1. उनि 316।
2. गांधीवाद, पृ. 83।
3. धर्म : एक, पृ. 76।
4. मनु 9/334 ;
   विप्राणां वेदविदुषां, गृहस्थानां यशस्विनाम्।
   शुश्रूषैव तु शूद्रस्य, धर्मो निःश्रेयसः परः।।
5. मनु 5/104।
6. मनु 8/270।
7. मनु 8/281; शूद्रों की सामाजिक स्थिति का विस्तृत वर्णन 'सेवासिंह' द्वारा लिखित 'भगवद्गीता' में पठनीय है।
8. गौतम 2/3/4।
9. मनु 4/81 ;

यो यस्य धर्ममाचष्टे, यश्चैवादिशति व्रतम्।
सोऽसंवृतं नाम तमः, सह तेनैव मज्जति।।

10. रामायण 7/73/76।
11. प्रवचन भा. 4, पृ. 182।
12. गांधी और पृ. 19, इन सभी स्थितियों के विस्तृत वर्णन हेतु देखें डॉ. बाबासाहेब अम्बेडकर सम्पूर्ण वाङ्मय खंड पृ. 56, 57।
13. जाति का....., पृ. 11.
14. गांधी और पृ. 131, 132.
15. सम्पूर्ण गांधी वाङ्मय खंड 13, पृ. 234.
16. हरिजन-उत्थान पृ. 31.
17. हरिजन से पृ. 143.

सहायक आचार्य
अहिंसा एवं शांति विभाग
जैन विश्वभारती संस्थान, लाडनूं

◆ ◆ ◆

महत्त्वपूर्ण सूचना

अलख दृष्टि (त्रैमासिक) शोध-पत्रिका के पाठकों, ग्राहकों व शुभचिन्तकों को सूचित किया जाता है कि वे अब भारत की ओरियण्टल बैंक ऑफ कॉमर्स की किसी भी शाखा में खाता नं. 10271131001021 तथा IFSC Code No. ORBC 0101027 में शुल्क, अनुदान या विज्ञापन की राशि जमा कर सकते हैं। साथ ही हमारे कार्यालय को सूचित करें कि अमुक राशि किस ब्रांच में जमा की गई है। इसके अतिरिक्त राशि या शुल्क मनीऑर्डर या बैंक ड्राफ्ट द्वारा भी भेज सकते हैं और आप ई-मेल से शोध-लेख भी भेज सकते हैं। पत्रिका का ई-मेल dr.aptripathi@rediffmail.com है। कृपया सुविधा का पूरा लाभ उठाएँ।

—व्यवस्थापक